

अतो भव्यैः सदा कार्या जिनभक्तिः सुशर्मदा । त्यक्त्वा मिथ्यामतं शीघ्रं स्वर्गमोक्षसुखाप्तये ॥२८॥
यथा पद्मरथो राजा जिनभक्तिपरोभवत् । अन्यैश्चापि महाभव्यै-र्भवितव्यं तथा श्रिये ॥२९॥
यद्भक्तिर्भुवनत्रयेऽत्र नितरां निर्वाणसंसाधिनी सामान्येन सुरेन्द्रखेचरनराधीशादिशर्मप्रदा ।
स श्रीमान्मुनिपुंगवः शुचितरः सत्केवलोद्योतकोदद्यात्सारसुखं समस्तजगतो पूज्यः सतां सेवितः ॥३०॥

इति कथाकोशे जिनभक्तपद्मरथस्य कथा समाप्ता ।

२१. पञ्चनमस्कारमंत्रप्रभावकथा ।

नत्वा पंच गुरुभक्त्या पञ्चमीगतिसिद्धये । कथा पञ्चनमस्कार-फलस्योच्चैर्निगद्यते ॥१॥
अंगदेशे सुविख्याते चम्पायां चारुलोचनः । प्रतापनिर्जिताराति-र्जातो राजा नृवाहनः ॥२॥
श्रेष्ठि वृषभदासाख्यो-र्हृद्वासी मानसप्रियः । श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोज-सेवनैकलसत्क्रियः ॥३॥
श्रेष्ठिनस्तस्य गोपालः कदाचित्पुण्ययोगतः । स्वेच्छया गृहमागच्छन्नरण्ये भुवनोत्तमम् ॥४॥

गणधर हुए। इसलिए भव्य पुरुषों को उचित है कि वे मिथ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्ष को देने वाली जिनभगवान् की भक्ति निरन्तर पवित्र भावों के साथ करें और जिस प्रकार पद्मरथ सच्चा जिनभक्त हुआ, उसी प्रकार वे भी हों ॥२३-२९॥

जिनभक्ति सब प्रकार का सांसारिक सुख देती है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति का कारण है, जो केवलज्ञान द्वारा संसार के प्रकाशक हैं और सत्पुरुषों द्वारा पूज्य हैं, वे भगवान् वासुपूज्य सारे संसार को मोक्ष सुख प्रदान करें, कर्मों के उदय से घोर दुःख सहते हुए जीवों का उद्धार करें ॥३०॥

२१. पंच नमस्कार मंत्र-माहात्म्य कथा

मोक्षसुख प्रदान करने वाले श्रीअर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार कर पंच नमस्कार मंत्र की आराधना द्वारा फल प्राप्त करने वाले सुदर्शन की कथा लिखी जाती है ॥१॥

अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी में गजवाहन नाम के एक राजा हो चुके हैं। वे बहुत खूबसूरत और साथ ही बड़े भारी शूरवीर थे। अपने तेज से शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सारे राज्य को उन्होंने निष्कण्टक बना लिया था। वहीं वृषभदत्त नाम के एक सेठ रहा करते थे। उनकी गृहिणी का नाम था अर्हद्वासी। अपनी प्रिया पर सेठ का बहुत प्रेम था। वह भी सच्ची पतिभक्ति परायणा थी, सुशीला थी, सती थी, वह सदा जिनभक्ति में तत्पर रहा करती थी ॥२-३॥

वृषभदत्त के यहाँ एक ग्वाल नौकर था। एक दिन वह वन से अपने घर पर आ रहा था। समय शीतकाल का था। जाड़ा खूब पड़ रहा था। उस समय रास्ते में उसे एक ऋद्धिधारी मुनिराज के दर्शन हुए, जो कि एक शिला पर ध्यान लगाये बैठे हुए थे। उन्हें देखकर ग्वाले को बड़ी दया आयी। वह

दृष्ट्वा चारणयोगीन्द्रं यथा स्तिमितमद्भुतम्। अभ्रावकाशिनं शीत-काले तीव्रे शिलास्थितम् ॥५॥
 अहो कथं मुनीन्द्रोसौ वस्त्रादिपरिवर्जितः। शिलापीठे स्थितो रात्रिं कष्टतो गमयिष्यति ॥६॥
 संचिन्त्य गृहं गत्वा मुनिं स्मृत्वा सुमानसे। तथा पश्चिमरात्रौ च गृहीत्वा महिषीः पुनः ॥७॥
 तत्रागत्य समालोक्य तं मुनिं ध्यानसंस्थितम्। तच्छरीरे महाशीतं तुषारं पतितं द्रुतम् ॥८॥
 स्फोटयित्वा स्वहस्तेन मुनेः पादादिमर्दनम्। कृत्वा स्वास्थ्यं निधायोच्चैः पुण्यभागी बभूव च ॥९॥
 प्रभातेऽसौ महाध्यान-मुपसंहृत्य धीधनः। अयमासन्नभव्योस्ति मत्वेति मुनिनायकः ॥१०॥

“णमो अरिहंताणं”

इति दत्त्वा महामंत्रं तस्मै स्वर्मोक्षदायकम्। तमेवाशु समुच्चार्य नभोभागे स्वयं गतः ॥११॥
 गोपालस्य तदा तस्य तन्मंत्रस्योपरि स्थिरा। संजाता महती श्रद्धा सैव लोके सुखप्रदा ॥१२॥
 ततोऽसौ सर्वकार्येषु गोपालः परमादरात्। पूर्वमेव महामंत्रं तमुच्चरति सुस्फुटम् ॥१३॥
 एकदा श्रेष्ठिना तेन पठन्मंत्रं स गोपकः। किं रे करोषि चापल्यं वारितश्चेति धीमता ॥१४॥
 तेनोक्ते पूर्ववृत्तान्ते श्रेष्ठी सन्तुष्टमानसः। संजगाद त्वमेवात्र धन्यो गोप महीतले ॥१५॥
 येन दृष्टौ मुनीन्द्रस्य पादौ त्रैलोक्यपूजितौ। भवन्ति भुवने सन्तः सत्यं धर्मानुरागिणः ॥१६॥
 अथैकदा महिष्योस्य वल्लिक्षेत्रं प्रभक्षितुम्। गंगानदीं समुत्तीर्य निर्गता निजलीलया ॥१७॥

यह विचार कर, कि अहा! इनके पास कुछ वस्त्र नहीं है और जाड़ा इतने जोर का पड़ रहा है, तब भी ये इसी शिला पर बैठे हुए ही रात बिता डालेंगे, अपने घर गया और आधी रात के समय अपनी स्त्री को साथ लिए मुनिराज के पास आया। मुनिराज को जिस अवस्था में बैठे हुए वह देख गया था, वे अब भी उसी तरह ध्यानस्थ बैठे हुए थे। उनका सारा शरीर ओस से भीग रहा था। उनकी यह हालत देखकर दयाबुद्धि से उसने मुनिराज के शरीर पर से ओस को साफ किया और सारी रात वह उनके पाँव दाबता रहा, सब तरह उनकी वैयावृत्य करता रहा। सबेरा होते ही मुनिराज का ध्यान पूरा हुआ। उन्होंने आँख उठाकर देखा तो ग्वाले को पास ही बैठा पाया। मुनिराज ने ग्वाले को निकट भव्य समझकर पंच नमस्कार मंत्र का उपदेश दिया, जो कि स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति का कारण है। इसके बाद मुनिराज भी पंचनमस्कार मंत्र का उच्चारण कर आकाश में विहार कर गए ॥४-११॥

ग्वाले की धीरे-धीरे मंत्र पर बहुत श्रद्धा हो गई। वह किसी भी काम को जब करने लगता तो पहले ही नमस्कार मंत्र का स्मरण कर लिया करता था। एक दिन जब ग्वाला मंत्र पढ़ रहा था, तब उसे उसके सेठ ने सुन लिया। वे मुस्कराकर बोले-क्यों रे, तूने यह मंत्र कहाँ से उड़ाया? ग्वाले ने सब बात अपने स्वामी से कह दी। सेठ ने प्रसन्न होकर ग्वाले से कहा-भाई, क्या हुआ यदि तू छोटे भी कुल में उत्पन्न हुआ? पर आज तू कृतार्थ हुआ, जो तुझे त्रिलोकपूज्य मुनिराज के दर्शन हुए। सच बात है सत्पुरुष धर्म के बड़े प्रेमी हुआ करते हैं ॥१२-१६॥

एक दिन ग्वाला भैंसें चराने के लिए जंगल में गया। समय वर्षा का था। नदी नाले सब पूर थे। उसकी भैंसें चरने के लिए नदी पार जाने लगी। सो इन्हें लौटा लाने की इच्छा से ग्वाला भी उनके पीछे

तां निवर्तयितुं सोपि महिषीर्गोपकस्तदा। तं सुमंत्रं समुच्चार्य नद्यां झपां प्रदत्तवान् ॥१८॥
 तत्रादृश्योरुकाष्ठेन विद्धोसौ जठरे तदा। प्रच्छन्नदुर्जनेनेव तीक्ष्णेन प्राणहारिणा ॥१९॥
 मृत्वा निदानतस्तस्य श्रेष्ठिनस्तनयोभवत्। अर्हद्वास्याः शुभे गर्भे पुण्यान्नाम्ना सुदर्शनः ॥२०॥
 रूपलावण्यसौभाग्य-धनधान्यसमन्वितः। संजातः कृतपुण्यानां किमप्यत्र न दुर्लभम् ॥२१॥
 ततः सागरदत्तस्य पुत्रीं नाम्ना मनोरमाम्। जातां सागरसेनायां युक्त्याऽसौ परिणीतवान् ॥२२॥
 एकदासौ महाश्रेष्ठी सुधीर्वृषभदत्तवाक्। त्रिधा वैराग्यमासाद्य धृत्वा तं स्वपदे सुतम् ॥२३॥
 मुनेः समाधिगुप्तस्य पादमूले सुभक्तितः। दीक्षामादाय जैनेन्द्रिं मुनिर्जातो विचक्षणः ॥२४॥
 तदा सुदर्शनो धीमान्प्राप्य श्रेष्ठीपदं महत्। राजादिपूजितो जातः सुप्रसिद्धो बभूव च ॥२५॥
 नित्यं श्रीमज्जिनेन्द्रोक्त-श्रावकाचारतत्परः। दानपूजास्वशीलादि-धर्मकर्मपरोऽभवत् ॥२६॥

ही नदी में कूद पड़ा। जहाँ वह कूदा वहीं एक नुकीला लकड़ा गड़ा हुआ था। सो उसके कूदते ही लकड़े की नोक उसके पेट में जा घुसी। उससे उसका पेट फट गया। वह उसी समय मर गया। वह जिस समय नदी में कूदा था, उस समय सदा के नियमानुसार पंचनमस्कार मंत्र का उच्चारण कर कूदा था। वह मरकर मंत्र के प्रभाव से वृषभदत्त के यहाँ पुत्र हुआ। वह जाता तो कहीं स्वर्ग में पर, उसने वृषभदत्त के यही उत्पन्न होने का निदान कर लिया था, इसलिए निदान उसकी ऊँची गति का बाधक बन गया। उसका नाम रखा गया सुदर्शन। सुदर्शन बड़ा सुन्दर था। उसका जन्म माता-पिता के लिए खूब उत्कर्ष का कारण हुआ। पहले से कई गुणी सम्पत्ति उनके पास बढ़ गई। सच है-पुण्यवानों के लिए कहीं भी कुछ कमी नहीं रहती ॥१७-२१॥

वहीं एक सागरदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम था सागरसेना। उसके एक पुत्री थी। उसका नाम मनोरमा था। वह बहुत सुन्दरी थी। देवकन्यायें भी उसकी रूपमाधुरी को देखकर शर्मा जाती थी। उसका ब्याह सुदर्शन के साथ हुआ। दोनों दम्पति सुख से रहने लगे ॥२२॥

एक दिन वृषभदत्त समाधिगुप्त मुनिराज के दर्शन करने के लिए गए। वहाँ उन्होंने मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश सुना। उपदेश उन्हें बहुत रुचा और उसका प्रभाव भी उन पर खूब पड़ा। संसार की दशा देखकर उन्हें बहुत वैराग्य हुआ। वे घर का कारोबार सुदर्शन के सुपुर्द कर समाधिगुप्त मुनिराज के पास दीक्षा लेकर तपस्वी बन गए ॥२३-२४॥

पिता के प्रव्रजित हो जाने पर सुदर्शन ने भी खूब प्रतिष्ठा सम्पादन की। राजदरबार में भी उसकी पिता के जैसी ही पूछताछ होने लगी। वह सर्वसाधारण में खूब प्रसिद्ध हो गया। सुदर्शन न केवल लौकिक कामों में ही प्रेम करता था किन्तु वह उस समय एक बहुत धार्मिक पुरुषों में गिना जाता था। वह सदा जिनभगवान् की भक्ति में तत्पर रहता, श्रावक के व्रतों का श्रद्धा के साथ पालन करता, दान देता, पूजन स्वाध्यान करता। यह सब होने पर भी ब्रह्मचर्य में बहुत दृढ़ था ॥२५-२६॥

कदाचिद्ध्रुवा साध्वं वनक्रीडनहेतवे। गतोऽसौ निजसंभूत्या श्रेष्ठी सर्वगुणान्वितः ॥२७॥
तं दृष्ट्वा श्रेष्ठिनं तत्र निधानं रूपसम्पदः। तद्राज्ञी विह्वलीभूया-ऽभयाख्या प्राह धात्रिकाम् ॥२८॥
कोयं भो धात्रिके धीमान्नरकोटिशिरोमणिः। तयोक्तं देवि विख्यातो राजश्रेष्ठी सुदर्शनः ॥२९॥
तच्छ्रुत्वा सावदद्राज्ञी यद्यमुं पुरुषोत्तमम्। त्वं ददासि समानीय तदाजीवाम्यहं ध्रुवम् ॥३०॥

एक दिन मगधाधीश्वर गजवाहन के साथ सुदर्शन वनविहार के लिए गया। राजा के साथ राजमहिषी भी थी। सुदर्शन सुन्दर तो था ही, सो उसे देखकर राजरानी काम के पाश में बुरी तरह फँसी। उसने अपनी एक परिचारिका को बुलाकर पूछा-क्यों तू जानती है कि महाराज के साथ आगन्तुक कौन है? और ये कहाँ रहते हैं? ॥२७-२८॥

परिचारिका ने कहा-देवी, आप नहीं जानती, ये तो अपने प्रसिद्ध राजश्रेष्ठी सुदर्शन हैं ॥२९॥

राजमहिषी ने कहा-हाँ! तब तो ये अपनी राजधानी के भूषण हैं। अरी, देख तो इनका रूप कितना सुन्दर, कितना मन को अपनी ओर खींचने वाला है? मैंने तो आज तक ऐसा सुन्दर नररत्न नहीं देखा। मैं तो कहती हूँ, इनका रूप स्वर्ग के देवों से भी कहीं बढ़कर है। तूने भी कभी ऐसा सुन्दर पुरुष देखा है ॥३०॥

वह बोली-महारानी जी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके समान सुन्दर पुरुष रत्न तीन लोक में भी नहीं मिलेगा।

राजमहिषी ने उसे अपने अनुकूल देखकर कहा-हाँ तो तुझसे मुझे एक बात कहनी है।

वह बोली-वह क्या, महारानी जी?

महारानी बोली-पर तू उसे पूरा कर दे तो मैं कहूँ, वह बोली-देवी, भला, मैं तो आपकी दासी हूँ फिर मुझे आपकी आज्ञा पालन करने में क्यों इनकार होगा। आप निःसंकोच होकर कहिए।

जहाँ तक मेरा बस चलेगा, मैं उसे पूरा करूँगी। महारानी ने कहा-देख, मुझे तेरे पर पूर्ण विश्वास है, इसलिए मैं अपने मन की बात तुझे कहती हूँ। देखना कहीं मुझे धोखा न देना? तो सुन, मैं जिस सुदर्शन की बात तुझसे कह आई हूँ, वह मेरे हृदय में स्थान पा गया है। उसके बिना तुझे संसार निःसार और सूना जान पड़ता है। तू यदि किसी प्रयत्न से मुझे उससे मिला दे तब ही मेरा जीवन बच सकता है। अन्यथा समझ संसार में मेरा जीवन कुछ ही दिनों के लिए है।

वह महारानी की बात सुनकर पहले तो कुछ विस्मित सी हुई, पर थी तो आखिर पैसे की गुलाम न? उसने महारानी की आशा पूरी कर देने के बदले में अपने को आशातीत धन की प्राप्ति होगी, इस विचार से कहा-महारानी जी, बस यही बात है? इसी के लिए आप इतनी निराश हुई जाती है? जब तक मेरे शरीर में दम है तब तक आपको निराश होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। मैं आपकी आशा अवश्य पूरी करूँगी। आप घबराये नहीं। बहुत ठीक लिखा है-

धात्री जगाद भो देवि करिष्यामि तवेप्सितम्। अवश्यं दुष्टनारीभिर्निन्दितं क्रियते न किम् ॥३१॥
 स श्रीसुदर्शनः श्रेष्ठी विशिष्टश्रावकव्रती। अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां रात्रौ भीमे श्मशानके ॥३२॥
 स्थित्वा वैराग्यभावेन योगं गृह्णाति शुद्धधीः। तन्मत्वा धात्रिका सापि पापकर्मविचक्षणा ॥३३॥
 कुंभकारगृहं गत्वा मृत्तिकापुत्तलं तदा। नरप्रमाणकं शीघ्रं कारयित्वा सुवाससा ॥३४॥
 वेष्टयित्वा समादाय राज्ञीपार्श्वे चचाल सा। किमेतद्भात्रिके ब्रूहि धृतेति द्वारपालकैः ॥३५॥
 कौटिल्येन तया तत्र क्षिप्त्वा पुत्तलकं क्षितौ। भग्नमालोक्य कोपेन प्रोक्तं धात्र्या सुधूर्तया ॥३६॥
 रे रे दुष्टाः सुपापिष्ठा भवद्भिः निन्दितं कृतम्। राज्या नरव्रतं चास्ति पूजयित्वा सुपुत्तलम् ॥३७॥

असभ्य और दुष्ट स्त्रियाँ कौन-सा बुरा काम नहीं करती? अभया की धाय भी ऐसी ही स्त्रियों में थी। फिर वह क्यों इस काम में अपना हाथ न डालती? वह अब सुदर्शन को राजमहल में ले आने के प्रयत्न में लग गई ॥३१॥

सुदर्शन एक धर्मात्मा श्रावक था। वह वैरागी था। संसार में रहता तब भी सदा उससे छुटकारा पाने के उपाय में लगा रहता था। इसलिए वह ध्यान का भी अभ्यास किया करता था। अष्टमी और चतुर्दशी को रात्रि में वह भयंकर श्मशान में जाकर ध्यान करता। धाय को सुदर्शन के ध्यान की बात मालूम थी। उसने सुदर्शन को राजमहल में लिवा ले जाने को एक षड्यंत्र रचा। एक दिन वह एक कुम्हार के पास गई और उससे मनुष्य के आकार का एक मिट्टी का पुतला बनवाया और उसे वस्त्र पहनाकर वह राजमहल लिवा ले चली। महल में प्रवेश करते समय पहरेदारों ने उसे रोका और पूछा कि यह क्या है? वह उसका कुछ उत्तर न देकर आगे बढ़ी। पहरेदारों ने उसे नहीं जाने दिया। उसने गुस्से का ढोंग बनाकर पुतले को जमीन पर दे मारा। वह चूर-चूर हो गया। इसके साथ ही उसने अकड़कर कहा-पापियों, दुष्टों, तुमने आज बड़ा अनर्थ किया है। तुम नहीं जानते कि महारानी के नरव्रत था, सो वे इस पुतले की पूजा करके भोजन करती। सो तुमने इसे फोड़ डाला है। अब वे कभी भोजन नहीं करेंगी। देखो, मैं अब महारानी से जाकर तुम्हारी दुष्टता का हाल कहती हूँ। फिर वे सबेरे ही तुम्हारी क्या गति करती हैं? तुम्हारी दुष्टता सुनकर ही वे तुम्हें जान से मरवा डालेंगी। धाय की धूर्यता से बेचारे पहरेदारों के प्राण सूख गए। उन्हें काटो तो खून नहीं। मारे डर के वे थर-थर काँपने लगे। वे उसके पाँवों में पड़कर अपने प्राण बचाने की उससे भीख माँगने लगे। बड़ी आरजू मित्रत करने पर उसने उनसे कहा-तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे दया आती है। खैर, मैं तुम्हारे बचाने का उपाय करूँगी। पर याद रखना अब तुम मुझे कोई काम करते समय मत छेड़ना। तुमने इस पुतले को तो फोड़ डाला, बतलाओ अब महारानी आज अपना व्रत कैसे पूरा करेंगी? और न इसी समय और दूसरा पुतला ही बन सकता है। अस्तु। फिर भी मैं कुछ उपाय करती हूँ। जहाँ तक बन पड़ा वहाँ तक तो दूसरा पुतला ही बनवाकर लाती हूँ और यदि नहीं बन सका तो किसी जिन्दा ही पुरुष को मुझे थोड़ी देर के लिए लाना पड़ेगा। तुम्हें सचेत करती हूँ कि उस समय मैं किसी से नहीं बोलूँगी, इसलिए तुम मुझसे कुछ कहना सुनना नहीं। बेचारे पहरेदारों को तो अपनी जान की पड़ी

पश्चात्तया च कर्त्तव्यं भोजनं नान्यथा ध्रुवम्। अतः प्रभाते मार्यन्ते भवन्तोऽन्यायकारिणः ॥३८॥
 तदा भीत्वा जगुस्तेपि भो मातस्त्वं क्षमां कुरु। कदाचित्कोपि नैव त्वां वारयत्यत्र सर्वथा ॥३९॥
 एवं सर्वान्वशीकृत्य धात्री तान्द्वारपालकान्। अष्टम्याश्च तथा रात्रौ गत्वा घोरे श्मशानके ॥४०॥
 कायोत्सर्गस्थितं दृष्ट्वा श्रेष्ठिनं तं सुदर्शनम्। राज्ञ्याः समर्पयामास तत्रानीय प्रयत्नतः ॥४१॥
 आलिङ्गनादिविज्ञानैः सा राज्ञी कामपीडिता। नानोपसर्गकं चक्रेऽभयाख्या तस्य धीमतः ॥४२॥
 सः श्रेष्ठी मेरुवद्धीरो गंभीरो जलधेस्तराम्। श्रीमज्जैनेन्द्रपादाब्ज-सेवनैकमधुव्रतः ॥४३॥
 एतस्मादुपसर्गान्मे यदि शान्तिर्भविष्यति। पाणिपात्रे तदाहारं करिष्यामि सुनिश्चयात् ॥४४॥
 इति प्रतिज्ञामादाय संस्थितः काष्ठवत्तराम्। सन्तः कष्टशतैश्चापि चारित्रात्र चलत्यलम् ॥४५॥
 असमर्था तदा भूत्वा राज्ञी तच्छीलखण्डने। संविदार्य नखैर्देहं स्वकीयं दुष्टमानसा ॥४६॥
 इदं मे श्रेष्ठिना चक्रे सा चकारेति पूकृतिम्। किं न कुर्वन्ति पापिन्यो निन्द्यं दुष्टस्त्रियो भुवि ॥४७॥

हुई थी, इसलिए उन्होंने हाथ जोड़कर कह दिया कि-अच्छा, हम लोग आप से अब कुछ नहीं कहेंगे। आप अपना काम निडर हो कर कीजिए। इस प्रकार वह धूर्ता सब पहरेदारों को अपने वश कर उसी समय श्मशान में पहुँची ॥३२-४०॥

श्मशान जलती चिताओं से बड़ा भयंकर बन रहा था उसी भयंकर श्मशान में सुदर्शन कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था। महारानी अभया की परिचारिका ने उसे उठा लाकर महारानी के सुपुर्द कर दिया। अभया अपनी परिचारिका पर बहुत प्रसन्न हुई सुदर्शन को प्राप्त कर उसके आनन्द का कुछ ठिकाना न रहा, मानो उसे अपनी मनमानी निधि मिल गई। वह काम से तो अत्यन्त पीड़ित थी ही, उसने सुदर्शन से बहुत अनुनय विनय किया, इसलिए कि वह उसकी इच्छा पूरी करके उसे सुखी करे, कामाग्नि से जलते हुए शरीर को आलिंगन सुधा प्रदान कर शीतल करें। पर सुदर्शन ने उसकी एक भी बात का उत्तर नहीं दिया। यह देख रानी ने उसके साथ अनेक प्रकार की कुचेष्टाएँ करनी आरंभ की, जिससे वह विचलित हो जाये। पर तब भी रानी की इच्छा पूरी नहीं हुई। सुदर्शन मेरु सा निश्चल और समुद्र सा गंभीर बना रहकर जिनभगवान् के चरणों का ध्यान करने लगा। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं इस उपसर्ग से बच गया तो अब संसार में रहकर साधु हो जाऊँगा। प्रतिज्ञा कर वह काष्ठ की तरह निश्चल होकर ध्यान करने लगा। बहुत ठीक लिखा है-

सत्पुरुष सैकड़ों कष्ट सह लेते हैं, पर अपने व्रत से कभी नहीं चलते। अनेक तरह का यत्न, अनेक कुचेष्टाएँ करने पर भी जब रानी सुदर्शन को शील शैल से न गिरा सकी, उसे तिल भर भी विचलित नहीं कर सकी, तब शर्मिन्दा होकर उसने सुदर्शन को कष्ट देने के लिए एक नया ही ढोंग रचा। उसने अपने शरीर को नखों से खूब खुजा डाला, अपने कपड़े फाड़ डाले, भूषण तोड़-फोड़ डाले और यह कहती हुई वह जोर-जोर से हिचकियाँ ले लेकर रोने लगी कि हाय! इस पापी दुराचारी ने मेरी यह हालत कर दी। मैंने तो इसे भाई समझकर अपने महल बुलाया था। मुझे क्या

तदाकर्ण्य महीनाथो महाकोपेन कम्पितः । नीत्वा श्मशानके श्रेष्ठं मार्यतामिति चोक्तवान् ॥४८॥
 ततो राजभटैः सोपि समानीतः श्मशानके । तत्रैकेन गले तस्य खड्गो मुक्तो दुरात्मना ॥४९॥
 तदा तच्छीलमाहात्म्यात्स खड्गः सम्पतन्नपि । पुष्पमालाभवत्कण्ठे सुगन्धीकृतदिङ्मुखा ॥५०॥
 जय त्वं त्रिजगत्पूज्य-जिनपादाब्जषट्पद । विशिष्टधीरहो श्रेष्ठिन् श्रावकाचारकोविदः ॥५१॥
 इत्यादिभिः शुभैर्वाक्यैः पुष्पवृष्ट्यादिभिस्तराम् । देवास्तं पूजयन्ति स्म लसद्भर्मानुरागतः ॥५२॥
 अहो पुण्यवतां पुंसां कष्टं चापि सुखायते । तस्माद्भव्यैः प्रयत्नेन कार्यं पुण्यं जिनोदितम् ॥५३॥
 पुण्यं श्रीमज्जिनेन्द्राणां भक्त्या यच्चाचनं सदा । पात्रदानं तथा शीलं सोपवासादिकं मतम् !! ५४॥
 श्रुत्वा तद्वृतमाहात्म्यं श्रेष्ठिनो भुवनोत्तमम् । राज्ञा लोकैः समागत्य सत्क्षमां कारितः सुधीः ॥५५॥
 ततः सुदर्शनः श्रेष्ठी संसारादेर्विरक्तवान् । दत्त्वा श्रेष्ठिपदं शीघ्रं सुकान्ताख्यसुताय च ॥५६॥
 नत्वा मुनिं जगत्पूतं भक्त्या विमलवाहनम् । दीक्षामादाय जैनेन्द्रीं मुनिर्भूत्वातिनिर्मलः ॥५७॥

मालूम था कि यह इतना दुष्ट होगा? हाय! दौड़ो!! मुझे बचाओ! मेरी रक्षा करो! यह पापी मेरा सर्वनाश करना चाहता है। रानी के चिल्लाते ही बहुत से नौकर-चाकर दौड़े आए और सुदर्शन को बाँधकर वे महाराज के पास लिवा ले गए।

सच है-पापिनी और दुष्ट स्त्रियाँ संसार में कौन-सा बुरा काम नहीं करती? अभया भी ऐसे ही स्त्रियों में एक थी। इसलिए उसने अपना चरित कर बतलाया। महाराज को जब यह हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने क्रोध में आकर सुदर्शन को मार डालने का हुकुम दे दिया। महाराज की आज्ञा होते ही जल्लाद लोग उसे श्मशान में लिवा ले गए। उनमें से एक ने अपनी तेज तलवार सुदर्शन के गले पर दे मारी। पर यह हुआ क्या? जो सुदर्शन को उससे कुछ कष्ट नहीं पहुँचा और उलटा उसे वह तलवार का मारना ऐसा जान पड़ा, मानो किसी ने उस पर फूल की माला फेंकी हो। जान पड़ा यह सब उसके अखण्ड शीलव्रत का प्रभाव था। ऐसे कष्ट के समय देवों ने आकर उसकी रक्षा की और स्तुति की कि सुदर्शन, तुम धन्य हो, तुम सच्चे जिनभक्त हो, सच्चे श्रावक हो, तुम्हारा ब्रह्मचर्य अखण्ड है, तुम्हारा हृदय सुमेरु से भी कहीं अधिक निश्चल है। इस प्रकार प्रशंसा कर देवों ने उस पर सुगन्धित फूलों की वर्षा की और धर्मप्रेम के वश होकर उसकी पूजा की। सच है-पुण्यवानों के लिए दुःख भी सुख के रूप में परिणत हो जाता है। इसलिए भव्य पुरुषों को जिनभगवान् के कहे मार्ग से पुण्यकर्म करना चाहिए। भक्तिपूर्वक जिनभगवान् की पूजा करना, पात्रों को दान देना, ब्रह्मचर्य का पालना, अणुव्रतों का पालन करना, अनाथ, अपाहिज दुखियों को सहायता देना, विद्यालय, पाठशाला खुलवाना, उनमें सहायता देना, विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ देना आदि पुण्यकर्म हैं। सुदर्शन के व्रतमाहात्म्य का हाल महाराज को मालूम हुआ। वे उसी समय सुदर्शन के पास आए और उन्होंने उससे अपने अविचार के लिए क्षमा माँगी ॥४१-५५॥

सुदर्शन को संसार की इस लीला से बड़ा वैराग्य हुआ। वह अपना कारोबार सब सुकान्त पुत्र को सौंपकर वन में गया और त्रिलोकपूज्य विमलवाहन मुनिराज को नमस्कार कर उनके पास प्रव्रजित

दर्शनज्ञानचारित्र-तपोत्यागैः सुशर्मदम्। केवलज्ञानमुत्पाद्य देवेन्द्राद्यैः समर्चितः ॥५८॥
भव्यान्सम्बोध्य पूतात्मा स्वर्गमोक्षसुखप्रदः। निराबाधसुखोपेतां मुक्तिं संप्राप्तवान्सुधीः ॥५९॥
इत्थं ज्ञात्वा महाभव्यैः कर्तव्यः परया मुदा। सारपञ्चनमस्कार-विश्वासः शर्मदः सताम् ॥६०॥

स जयति जिनचन्द्रः केवलज्ञानकान्तिर्मुदितसकलभव्योत्कृष्टनेत्रोत्पलौघः।

असुरसुरनरेन्द्रैः खेचरेन्द्रैः सुभक्त्या श्रुतजलधिमुनीन्द्रैः सेवितः शर्मदाता ॥६१॥

इति कथाकोशे पञ्चनमस्कारमंत्रप्रभावकथा समाप्ता।

२२. श्रीयममुनेः कथा

श्री जिनं भारतीं साधुं प्रणम्य परया मुदा। खण्डश्लोकैः कथा जाता कथ्यते सा सुखप्रदा ॥१॥
औद्वेदेशेऽत्र विख्याते धर्माख्यनगरे वरे। जातो राजा यमो धीमान्सर्वशास्त्रविचक्षणः ॥२॥
तद्ग्राही धनवत्याख्या गर्दभाख्यः सुतस्तयोः। सुताभूत्कोणिका नाम्ना रूपलावण्यमण्डिता ॥३॥
तस्यैव यमभूपस्य पुत्राः पञ्चशतानि च। अन्यराज्ञीषु संजाता जैनधर्मधुरन्धराः ॥४॥
दीर्घनामाभवन्मन्त्री मन्त्रकर्मपरायणः। एवं राज्यं प्रकुर्वाणः स राजा सुखतः स्थितः ॥५॥

हो गया। मुनि होकर सुदर्शन ने दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपश्चर्या द्वारा घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक भव्य पुरुषों को कल्याण का मार्ग दिखलाकर तथा देवादि द्वारा पूज्य होकर अन्त में वह निराबाध, अनन्त सुखमय मोक्षधाम में पहुँच गया ॥५६-५९॥

इस प्रकार नमस्कार मंत्र का माहात्म्य जानकर भव्यों को उचित है कि वे प्रसन्नता के साथ उस पर विश्वास करें और प्रतिदिन उसकी आराधना करें ॥६०॥

धर्मात्माओं के नेत्ररूपी कुमुद-पुष्पों के प्रफुल्लित करने वाले, आनन्द देने वाले और श्रुतज्ञान के समुद्र तथा मुनि, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि द्वारा पूज्य, केवलज्ञानरूपी कान्ति से शोभायमान भगवान् जिनचन्द्र संसार में सदा काल रहें ॥६१॥

२२. यम मुनि की कथा

मैं देव, गुरु और जिनवाणी को नमस्कार कर यम मुनि की कथा लिखता हूँ, जिन्होंने बहुत ही थोड़ा ज्ञान होने पर भी अपने को मुक्ति का पात्र बना लिया और अन्त में वे मोक्ष गए। यह कथा सब सुख की देने वाली है ॥१॥

उड्गदेश के अन्तर्गत धर्म नाम का प्रसिद्ध और सुन्दर शहर है। उसके राजा थे यम। वे बुद्धिमान् और शास्त्रज्ञ थे। उनकी रानी का नाम धनवती था। धनवती के एक पुत्र और एक पुत्री थी। उनके नाम थे गर्दभ और कोणिका। कोणिका बहुत सुन्दरी थी। धनवती के अतिरिक्त राजा की और भी कई रानियाँ थीं। उनके पुत्रों की संख्या पाँच सौ थी। ये पाँच सौ ही भाई धर्मात्मा थे और संसार से उदासीन रहा करते थे। राजमन्त्री का नाम दीर्घ था वह बहुत बुद्धिमान् और राजनीति का अच्छा जानकार था। राजा इन सब साधनों से बहुत सुखी थे और राज्य भी बड़ी शान्ति से करते थे ॥२-५॥